शिष्य का - ऐसा प्रश्न था कि `शुद्धात्मा' जो तुम कहते हो, वह कौन है ? कैसा है ? कि जिसका `स्वरूप' जानना चाहिए, और जिसे जानने से हित हो और अहित टले, वह क्या चीज है ?

तब कहा कि यह आत्मा अनादि-अनंत, नित्य उद्योतरूप, स्पष्ट प्रकाशमान ज्योति है। यह संसार अवस्था में पुण्य-पाप को उत्पन्न करनेवाले, दुरंत कषायचक्र (अर्थात) उसका जो शुभाशुभ भाव होता है, परंतु यह ज्ञायक शुभाशुभरूप नहीं होता, (ये तो) उसकी अवस्था में होते हैं।

ज्ञायकभाव जो वस्तु है, यह शुभाशुभरूप नहीं होती। जो इसरूप हो तो... वस्तु है जो ज्ञानरस, ज्ञानप्रकाश स्वरूप तथा शुभाशुभ (भाव) है अचेतन, अंधकार स्वरूप, इसरूप आत्मा हो तो आत्मा जड़ हो जाये, आहाहा ! इसलिये यह शुभ एवं अशुभभावरूप

ज्ञायक वस्तु जो है पदार्थ, इसरूप नहीं होने से-शुभाशुभ रूप नहीं परिणमने से, इसमें प्रमत्त-अप्रमत्त के पर्यायरूप भेद इसमें नहीं हैं। आहाहा !

मूलगाथा है, छट्ठी का लेख कहते हैं न। आहाहा ! ज्ञायक वस्तु चैतन्य, आहा ! जो अकेला ज्ञानरस, आनंदरस, शांतरस, वीतरागरस स्वरूप विराजमान, यह रागरूप कैसे हो ? आत्मा जिनस्वरूपी, वीतरागस्वरूपमें विराजमान ज्ञायकभाव यह रागरूप कैसे हो ? आहाहाहा !

(श्रोता :- तब राग रूप कौन होता है ?) पर्याय में राग होता (है), वस्तु में राग नहीं। आहा ! चैतन्यप्रकाश का चन्द्र शीतल, शीतल, शीतल - ऐसा चैतन्यप्रकाश का पुण्ज प्रभु (ज्ञायक) यह अशीतल - ऐसा जो विकार एवं आकुलता, उसरूप कैसे हो ? आहाहा ! भगवान जिनचन्द्र स्वरूप प्रभु ! आहा ! वस्तु क्या हैं ? चैतन्य के रस से भरपूर प्रभु, वह अचेतन ऐसे शुभाशुभ परिणामों के भावरूप यह ज्ञायकभाव - वस्तुस्वभाव कैसे हो ? इसलिये वह प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं। यहाँ तक तो आया है, अंतिम एक पंक्ति रही है, महत्वपूर्ण।

उसे शुद्ध क्यों कहा ? ज्ञायकभाव यह शुभाशुभ भावरूप परिणमता नहीं उस वस्तु को आपने शुद्ध क्यों कहा ? तब कहते हैं, वह शुद्ध तो है ही। परंतु (अन्यद्रव्य से) भिन्न उपासना की जाए तो उसे शुद्ध जाना जाता है। क्या कहा ? वस्तु तो त्रिकाल शुद्ध है। वह तो है, परंतु है किसको ? आहाहाहा ! वही समस्त अन्य द्रव्यों के भाव, ***अन्य द्रव्य के भाव अर्थात कर्म के रस आदि, आहाहा ! इसमें विकार नहीं लेना। यहाँ तो अन्य द्रव्य के भाव लेना। यह अन्य द्रव्य के भावों से भिन्न होने पर, विकार से भिन्न हो जाता है।*** `भाव' - ऐसा कहना है न ! अन्यद्रव्य के भाव अर्थात अभी पुण्य-पाप के भाव वह यहाँ नहीं, अन्य द्रव्यों का जो `भाव' अनुभाग, उसकी शक्ति, **`भाव'** उससे भिन्न उसका लक्ष्य छोड़कर उससे भिन्न, जब उसका लक्ष्य छोड़े तब विकार का लक्ष्य भी साथ में छूट जाता है। आहाहाहा ! - ऐसा मार्ग है!

`वही समस्त अन्य द्रव्यों के भावों से'... अन्यद्रव्य के भाव से... यह अर्थ किया है। उसमें `मोक्षमार्ग प्रकाशक' में भिन्नरूप उपासित होता हुआ, स्वयं अर्थ यह किया है। क्या कहा ? यहाँ आत्मा ज्ञायकभाव शुद्ध चैतन्य स्वभावभाव त्रिकाल, स्वयं शुभाशुभ रूप नहीं हुआ, ऐसे शुद्ध स्वभाव को `शुद्ध' क्यों कहा ? ***है तो यह त्रिकालशुद्ध परंतु जिसने अन्य द्रव्य के भाव का लक्ष्य छोड़ा, और स्वद्रव्य की पर्याय में उसका सेवन किया... आहाहा ! उसका अर्थ यह हुआ कि अन्य द्रव्य के भावों से लक्ष्य छूटा, अर्थात स्वद्रव्य के भाव तरफ की उपासना हुयी, अर्थात विकार का लक्ष्य भी***

इसके साथ में छूट गया। आहाहा !

मूलमार्ग - ऐसा है भाई ! `दर्शनशुद्धि' की परिभाषा है यह तो... आहाहा ! मूल रकम, मूल रकम है यह पवित्र शुद्धज्ञायक है। परंतु `**है**' वह किसे ख्याल में आये ? `**है**' यह किसकी प्रतीति में आये ? `**है**' उसका ज्ञान किसको हो ? है तो है। आहाहाहा !

अन्य द्रव्य एवं अन्य द्रव्य के भाव का लक्ष्य छोड़कर जो अन्य द्रव्य के भाव में अस्तित्वपने का जोर है, वह छोड़कर और उससे छूटा अर्थात अंतर चैतन्य ज्ञायकभाव, की और उसकी पर्याय गई, आहाहा ! यह पर्याय ने उसका सेवन किया। आहाहा ! यह पर्याय जो वर्तमान ज्ञान और श्रद्धान की पर्याय है, यह पर के लक्ष्य को छोड़कर अपने चैतन्य के ज्ञायकभाव के लक्ष्य में जहाँ आया तब उसकी पर्याय में शुद्धता का सेवन हुआ, अर्थात शुद्धता में एकाग्रता हुयी, एकाग्रता हुयी इससे ज्ञात हुआ कि `यह' शुद्ध है। सूक्ष्मबात है बापू ! आहाहाहा !

चैतन्यधाम प्रभु स्वयं ज्योति सुखधाम... उसका सेवन अर्थात पर के आश्रय का लक्ष्य छोड़कर, एवं स्व चैतन्य ज्ञायकभाव, उसका लक्ष्य करने पर... यह लक्ष्य कब हो ? कि उसकी पर्याय में उस तरफ का झुकाव हो तब, तो उस पर्याय में द्रव्य का सेवन हुआ है ? `वह समस्त द्रव्यों के भावों से भिन्नरूप से उपासित होता हुआ,' वस्तु तो शुद्ध है, परंतु भिन्नरूपसे उपासित होता हुआ, उसे शुद्ध कहते हैं। उसे शुद्धपना ज्ञात हुआ। पर्याय में - शुद्ध दशा में यह शुद्ध है - - ऐसा ज्ञात हुआ। आहाहा ! समझ में आता है ? है सामने ?

एक और भगवान ज्ञायकभाव और एक तरफ, दूसरे सभी अनंता द्रव्य। यहाँ कर्म का मुख्यपना है, उसके तरफ का जो लक्ष्य है, आहाहा ! यहाँ से (त्रिकाली से) लक्ष्य तो अनादि से छूट गया है। इसलिये उसकी पर्याय में ***`यह शुद्ध है ऐसी तो दृष्टि हुई नहीं। इसलिये भिन्न रूप से सेवन करता हुआ', अन्यद्रव्यों के भावों को (अपने) द्रव्य से जुदा करने पर जुदा करते हुए इसका अर्थ यह कि द्रव्य ऊपर लक्ष्य जाने पर, यह लक्ष्य गया यह वर्तमान में पर्याय में शुद्धता हुयी, उस शुद्धता द्वारा `यह शुद्ध है' - ऐसा ज्ञात हुआ। आहाहा ! उसे शुद्ध है।***

जिसे शुद्ध है, उसे पर्यायमें अशुद्धता ज्ञात होती है और अशुद्धता ऊपर ही जिसका अनुभव और पर्याय ऊपर जिसकी रुचि, दृष्टि है, उसे तो शुद्ध है ही नहीं। वस्तु भले शुद्ध है, परंतु उसे शुद्ध है ही नहीं। आहाहा ! गजब बात है, समयसार (में) !! उसकी एक एक गाथा, एक एक पद, सर्वज्ञ अनुसार भाषा है। त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर के द्वारा कही हुई वस्तु ही यह संत कहते हैं। आहाहा ! और उस

न्याय से उनके ख्याल में आ सकता है। न्याय से ख्याल में आए, फिर अंदर जाय तो अनुभव हो। आहाहाहा ! एक पद शेष था न कल, कारण कि उसका कहीं स्पष्टीकरण शीघ्र नहीं हो सकता। आहाहा !

यह ही ज्ञायक है वह... ही... वह... ही अर्थात वह... ही... वह... ही... अर्थात ज्ञायक है वही है। तेज (प्रकाश) नहीं, वही। यह त्रिकाल ज्ञायक स्वरूप, जिसमें पर्याय नहीं, जिसमें शुभाशुभ भाव नहीं, जिसमें प्रमत्त-अप्रमत्त भेद नहीं। आहाहाहा ! ऐसी वस्तु है न, आहाहा ! `समस्त अन्यद्रव्य के भावों से भिन्न अन्य, आहाहा ! तीर्थंकर भी यहाँ तो नोकर्म में है, वास्तव में तो कर्म जो अंदर है, उसके तरफ का उदय भाव जो है उसके तरफ का लक्ष्य छोड़ करके, आहाहा ! स्वयं ज्ञायक चैतन्यमूर्ति प्रभु है। आहाहाहाहा ! चैतन्यचन्द्र है प्रभु तो, आहाहाहाहा ! वस्तु जिन (स्वरूप) `***घट घट अंतर जिन वसे, घट घट अंतर जैन,*** आहाहा ! परंतु ***मत मदिरा के पान सों मतवाला समझे न*** जिसका राग (करने को) अभिप्राय एवं पर की रुचि ऐसी (रूचि)वालों को, यह वस्तु है तो जिनस्वरूप। ***है तो शुद्ध, शुद्ध कहो, जिनस्वरूप कहो, ज्ञायक कहो, ध्रुव कहो, अभेद कहो, सामान्य कहो*** *(एक ही बात है)* आहाहाहा ! ऐसी वस्तु होने पर भी अज्ञानी का पर के ऊपर लक्ष्य है, इसलिए उसके पास यह द्रव्य मौजूद है, उसकी उसको खबर नहीं। आहाहाहाहा ! एक समय की पर्याय के समीप प्रभु मौजूद है, भगवान अनाकुल आनंद का नाथ, एक समय की पर्याय जो है ज्ञान की जाननेरूप, इस पर्याय के नजदीक ही प्रभु है। पूरा ध्रुव चिदानंद प्रभु पास में मौजूद है, परंतु वहाँ उसकी नजर न होने से... आहाहा ! `समयसार' १७-१८ गाथा में तो - ऐसा कहा कि उसकी वर्तमान ज्ञान की पर्याय... सूक्ष्म बात है बापा ! आहाहा ! प्रभु ! तुम्हारी प्रभुता का अंत न मिले। आहाहा ! उसकी प्रभुता की पूर्णता का कथन करना मुश्किल है। आहाहा ! - ऐसा तूं सर्वोत्कृष्टनाथ अंदर बिराजमान है। आहा ! उसे एक समय की पर्याय के एकत्ववाले को वह नजदीक है वह नजर में (आता नहीं)। पर्याय का स्वभाव तो - ऐसा है, क्या कहा ? ज्ञान की एक समय की पर्याय का स्वभाव तो - ऐसा है, कि पूरे द्रव्य (को) यह जानता है। समझ में आया ? आहाहाहा ! ***एक समय की प्रगट जो पर्याय है ज्ञान की, वर्तमान, उसमें यह द्रव्य ही जानने में आता है, परंतु अज्ञानी की दृष्टि वहाँ नहीं, आहाहाहा !*** अनादि की अज्ञानी की दृष्टि दया, दान, व्रत, काम, क्रोध के परिणामों पर है, अथवा उसे जाननेवाली एक समय की पर्याय... बस यह वहीं खड़ा हुआ है। आहाहा ! वह मिथ्यादृष्टि है, सत्यदृष्टि से विरुद्ध दृष्टि है।

सत्य जो प्रभु ज्ञायकभाव कहो, सत्यार्थ कहो, भूतार्थ कहो, सत्साहेब पूर्णानंदप्रभु,

आहाहा ! उसके ऊपर इसकी नजर नहीं, है तो ऐसी यह वस्तु है, ज्ञात होती ही है। क्या कहा ? ज्ञान की पर्याय में जानने में तो आती है, यही परमात्मा कहते हैं, प्रभु - ऐसा कहते हैं। त्रिलोकनाथ, जिनेश्वरदेव, उनका अनुसरण करनेवाले संतो - ऐसा कहते हैं कि प्रभु - ऐसा कहते हैं। ***प्रभु एकबार सुनो। तुम्हारी ज्ञान की वर्तमान एकसमय की दशा, उसका स्वपर प्रकाशक स्वभाव होने से, चाहे तुम्हारी नजर वहाँ न हो, परंतु पर्याय में द्रव्य ही ज्ञात होता है।*** आहाहाहाहा ! अरेरे ! ऐसी बात कहां है ? कहाँ जाना है कौन है, (जीव को) उसका पता नहीं लगे। आहाहा !

भगवान आत्मा... त्रिलोकनाथ - ऐसा कहते हैं, प्रभु तुम जितने महान प्रभु हो, इतना तुम्हारी एक समय की पर्याय में, ***अज्ञानदशा में भी पर्याय में ज्ञात होता है। क्योंकि ज्ञान की पर्याय का स्वभाव है स्वपरप्रकाशक, तो इस पर्याय में स्व प्रकाशित तो है। परंतु तुम्हारी नजर वहाँ नहीं।*** आहाहाहा ! तुम्हारी नजर (अभिप्राय) कहीं दया की... भक्ति की... व्रतपाले... पूजा वगैरह की - ऐसा जो राग, उसके ऊपर तुम्हारी नजर है। उस नजर के कारण राग से भिन्न जो राग को जाननेवाली, ज्ञान पर्याय है वही पर्याय स्व को जाननेवाली है, परंतु उसमें तुम्हारी नजर नहीं होने से, तुम्हें राग और पर्याय जानने में आती है, वह मिथ्याबुद्धि है, मिथ्यादृष्टि है। आहाहाहाहा ! समझ में आया ?

परंतु जिसकी दृष्टि परद्रव्य और पर भाव से हट गई, आहाहाहा ! एवं पर्याय के भेद... पर्याय इसमें नहीं, इसलिये पर्यायमें से लक्ष्य छूट कर... आहाहा ! अन्य द्रव्यों के भाव से लक्ष्य छूटा, तो राग से भी छूटा और राग से छूटने से पर्याय पर से भी लक्ष्य छूट गया। आहाहाहाहा ! ऐसी बात है बापू ! सम्यग्दर्शन की, धर्म की पहली वस्तु। ऐसी वस्तु है, अधिकतर लोग यों ही जिंदगी बिताकर तत्त्व की दृष्टि किये बिना चले जायेंगे। वह तो चौराशी के अवतार करेंगे बापा ! चौराशी के अवतार ! वह कोई तुम्हारा नहीं और तुम उसके नहीं। वहाँ जाकर जन्मोगे ! आहाहा !

तो एकबार जहाँ प्रभु है वहाँ नजर करो न ! जहाँ भगवान चैतन्य स्वरूप है प्रभु, अकेला अखण्ड आनंदकंद पूर्णानंद चैतन्यरस से भरपूर जिनस्वरूप आत्मा है। यह त्रिकाल जिनस्वरूपी प्रभु वीतराग है। उसे पर का लक्ष्य छोड़कर, राग का लक्ष्य छोड़कर... राग को जाननेवाली पर्याय (का) लक्ष्य छोड़ा तो उससे भी लक्ष्य छूट गया। आहाहाहा ! और उसका लक्ष्य जब आत्मा ऊपर गया तब पर्याय में शुद्धता प्रगटी। छठवीं गाथा बहुत महत्वपूर्ण पूंजी है। आहाहा !

`अन्य द्रव्यों (के) समस्त'... समस्त लिया न ? उसमें तीर्थंकर आये एवं तीर्थंकर

की वाणी आई-उसके ऊपर से भी लक्ष्य छोड़ दो। आहा ! `समस्त अन्य द्रव्य' और उसके `भाव' आहाहाहा ! भगवान का भाव तो केवलज्ञान, कर्म का भाव पुण्य-पाप का रस, इन सभी से लक्ष्य छोड़ दो। आहाहा ! अन्य द्रव्यों के भावों से भिन्नरूप उपासित होता हुआ, इसे राग से, निमित्त से भिन्न, आत्मा ज्ञायक भगवान पूर्णस्वभाव से भरपूर जिनचन्द्र वीतरागी शीतल स्वभाव से पूरा भरा हुआ भगवान उसके ऊपर लक्ष्य जाने पर, अर्थात कि उसकी पर्याय में उसका लक्ष्य होने पर, अर्थात कि उसकी पर्याय में द्रव्य का लक्ष्य होना, वह उसकी सेवा है। आहाहा ! यह द्रव्य की सेवा। आहाहा ! कितना भरा है इसमें, हाँ ? आहाहा ! अरेरे ! जगत कहाँ रहा है किस ओर चला जा रहा है; अनादि से भटकता, चौराशी के अवतार कर करके कौआ-कुत्ता निगोद के भव करके मिथ्यात्व में भटकते हुए मरा है, साधु भी हुआ अनंतबार, दिगम्बर साधु अनंतबार हुआ, परंतु दृष्टि राग और पर्याय ऊपर है। आहाहा ! जहाँ भगवान पूर्णस्वरूप है उसकी उपासना... उसका अर्थ कि उसका स्वीकार, उसका सत्कार, अर्थात कि उसका आश्रय।

`यह भिन्नरूप उपासित होता हुआ' शुद्ध कहलाता है। यह राग और पर्याय का लक्ष्य छोड़कर, स्वरूप की सेवा करनेवाले, अर्थात कि स्वरूप का लक्ष्य होने पर उसकी पर्याय में जो शुद्धता होती है, उस शुद्धता ने द्रव्य का सेवन किया, अर्थात शुद्धता ने द्रव्य को स्वीकारा, यह शुद्धता की पर्याय से शुद्धद्रव्य को स्वीकार किया। इसलिये शुद्ध की पर्याय में शुद्ध ज्ञात हुआ, उसे शुद्ध कहा जाता है। आहाहाहा ! भाई यह तो गंभीर भाषा है !!

यह तो उन्नीसवीं बार पढ़ा जाता है। समयसार पहले से अंत (तक) कभी डेढ वर्ष, कोई बार दो वर्ष, किसी बार ढाईवर्ष, इसप्रकार अठारह-अठारह बार चल चुका है। यह उन्नीसवीं वार प्रारंभ होता है। आहाहाहा ! गजब बात है।

वीतराग त्रिलोकनाथ उनकी वाणी... यह संत आड़तिया होकर घोषणा करते हैं। प्रभु ! तुम कौन हो ? यह तुम्हें कब ख्याल आये ? तुम हो ज्ञायक, जिसमें शुभाशुभ भाव है ही नहीं, इसलिये इसमें पर्याय भेद है ही नहीं, परंतु यह तुम्हें कब ख्याल में आये ? है तो है, शुद्ध। तुम जब पर का लक्ष्य छोड़कर और द्रव्य को ध्येय बनाओ, द्रव्य को ध्येय बनाकर जिस पर्याय में इसका सत्कार हुआ, उपासना हुई, शुद्धता प्रगटी, उस सम्यग्दर्शन ज्ञान की पर्याय में यह शुद्ध है - ऐसा जानने में आता है। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी बात है, कठिन बात है, बापू ! लोगों को वीतरागमार्ग मिला नहीं, बाहर की प्रवृत्ति, यह राग मार्ग, संसार मार्ग है, उसमें पड़ा है, (रचा) पचा है, अभी तो पूजा, भक्ति, व्रत और तप उपवास यह सभी रागमार्ग

है, अन्यमार्ग है, वह जैनमार्ग नहीं। आहाहाहा !

यहाँ प्रभु - ऐसा कहते हैं तुम्हारी प्रभुता कैसी है यह तुमने पूंछा था और उसका `स्वरूप' जानना चाहिए - ऐसा तुमने पूंछा था तब इसका उत्तर यह है कि इस वस्तु को पर (द्रव्य) का संपूर्ण लक्ष्य, संपूर्ण परद्रव्य और (पर) भाव का लक्ष्य छोड़कर, पूरणज्ञायक भाव शुद्धात्मा ऊपर (लक्ष्य) जाने पर जो पर्याय में शुद्धता होती है, सम्यग्दर्शन होता है, उस जीव को यह शुद्ध है - ऐसा कहा जाता है। पर्याय की शुद्धता का भान हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ यह अंतरका लक्ष्य करके, आश्रय करके, सत्कार एवं स्वभावका सन्मान करके, तब उस जीवको यह शुद्ध है - ऐसा कहा जाता है। कठिन बात है बापा ! आहाहा ! क्या हो ?

यह अनंतकाल यों का यों चला गया, जैन (कुल) में अनंतबार जन्मा, अनंतबार भगवान के समवसरण में भी गया। आहाहा ! परंतु यहाँ (ज्ञायक तरफ) जहाँ जाना है वहाँ नहीं गया, और उसकी विधि क्या है उसकी खबर नहीं हुई। आहाहा ! इस एक पंक्ति में - ऐसा भाव भरा है, इसका तो अंत आवे - ऐसा नहीं (लगता) बापा ! आहाहा ! यह भगवान की वाणी और उसका भाव, जो अंतर में भाषित होता है उतना तो भाषा में आये नहीं। आहाहाहा ! साक्षात् ऐसी वाणी मौजूद है देखो न। आहाहा ! वह ज्ञायकभाव, पुण्य-पापरूप हुआ नहीं। अर्थात पुण्य-पाप के होनेवाले, उसका कारण जो शुभाशुभ भाव, उसरूप प्रभु ज्ञायकभाव तो हुआ ही नहीं। इसलिये वह प्रमत्त-अप्रमत्त पर्याय उसमें नहीं। आहाहा ! चौदह गुणस्थानों के भेद भी इसमें नहीं।

- ऐसा जो अभेद भगवान ज्ञायकशुद्ध, एकरूप प्रभु वह, किसे शुद्ध कहलाये ? कौन उसे कहे कि जो शुद्ध तरफ का सत्कार करके और परद्रव्य का जिसे आश्रय और सत्कार छूट गया है... आहाहा ! भगवान पूर्णानंद के सिवाय, परवस्तु की कोई भी महानता, विशेषता, अचिंत्यता, चमत्कार सब छूट गया है, आहा ! महान हूँ तो मैं, शुद्ध हो तो भी मैं चमत्कारिक वस्तु हो तो भी मैं, प्रभु होय तो मैं। समझ में आया ? आहाहा !

- ऐसा है, अरेरे ! जिंदगी संसार में मजदूरी करके चली जाती है। सभी मजदूरी हैं यह पत्नी, बच्चे और धंधा, राग का बड़ा मजदूर है। आहाहा ! और कदाचित शुभभाव में आया तथा शुभ करे तो भी यह राग की मजदूरी है। मजदूर आहाहा ! शुभराग यह मजदूरी है, यह तुम्हारी चीज नहीं प्रभु ! तुम्हारी चीज में तो पर्याय भी नहीं - ऐसी चीज को ग्रहण करने से जो पर्याय होती है यह पर्याय (की) शुद्धता में यह शुद्ध है - ऐसा ज्ञात होता है। आहाहा !

यह दया-दान के विकल्प एवं व्रत के भावों से यह ज्ञात हो - ऐसा नहीं।

कारण कि यह तो राग है। यह तो दुःख है, राग है। यह व्रत, तप, भक्ति, पूजा, राग तो दुःख है, आहाहा ! और भगवान तो आनंद स्वरूप है, अतीन्द्रिय आनंद की गठान है। आहाहा ! उसकी सेवा अर्थात उसका सत्कार उसका आदर, अन्य सभी वस्तुओं से उसकी महानता भासने पर जो पर्यायमें निर्मलता प्रगट हो, उसको यह आत्मा शुद्ध है - ऐसा कहा जाता है। आहाहाहा ! गजब बात है न ? यह प्रभु के वचन है बापू शेष सभी निःसार है। आहाहाहा ! समझ में आया ? कुछ अर्थात समझ जाये तब तो प्रभु अलौकिक बात है। परंतु कुछ समझ में आया ? अर्थात किस रीति (पद्धति) से कहा जाता है ? किस रीति से कहते हैं इसकी गंध आती है (समझ आती है)? इसप्रकार। आहाहा !

अरे रे ! इसने मूलबात छोड़कर अन्य बात पकड़कर अनादि से बैठा (है) आहाहा ! मूल भगवान स्थित है वहाँ जाता नहीं, गरीब, पामर होकर पुण्य और पाप के भाव का भूखा है, दीन है, दीनता को पकड़कर बैठा हैं, एक समय की पर्याय भी पामर है। आहा... हाहा ! ***सम्यग्दृष्टि जीव को पूर्णता का ज्ञान पर्याय में होने पर भी यह पर्याय, केवलज्ञान के समक्ष भी पामर है। तब जहाँ अभी पर्याय में क्या वस्तु है, ज्ञात हुयी नहीं एवं पर को जानकर (पर्याय में) स्थित है, यह तो भिखारी में भिखारी पर्याय है दीन पर्याय है।*** जिसमें भगवान आया नहीं। जिस पर्याय मैं दीन पुण्य एवं पाप, दया और दान, व्रत और भक्ति, राग जिसमें आता है यह पर्याय तो भिखारी, आहाहा ! पामर है।

यहाँ तो ऐसी पर्याय में, जिसे शुद्ध अन्य द्रव्य की सेवा से भिन्न हुयी और शुद्ध चैतन्य मूर्ति प्रभु, पर्याय में उसका आदर हुआ उसका सत्कार हुआ, तब पर्याय में सम्यग्दर्शन हुआ, उस सम्यग्दर्शन ने यह शुद्ध है - ऐसा जाना। आहाहा ! यह ***सम्यग्दर्शन भी केवलज्ञानके पास पामर है और त्रिकाली वस्तु की तुलना में भी पामर है।*** आहाहाहा !

नित्यप्रभु, शुद्ध चैतन्यधातु, चैतन्यधातु चैतन्यपना ही जिसने धारण कर रखा है, जिसमें पुण्य एवं पाप, दया-दान, व्रत, विकल्प की गंध नहीं। चौदह गुणस्थान (रूप) पर्यायों की जिसमें गंध नहीं। आहाहा ! अरे तेरहवां गुणस्थान 'सयोगीकेवली' यह भी जिस वस्तु में नहीं, कारण कि वह पर्याय है। आहाहा ! ऐसे भगवान को जिसने शोधा, साधा और शुद्ध है इसप्रकार पर्याय में अनुभव हुआ, उसे यह आत्मा ज्ञायक एवं शुद्ध है, भूतार्थ है - ऐसा कहा जाता है। आहाहाहा ! ऐसी बात है बापू, अभी तो मुश्किल लगे - ऐसा है। अभी तो श्रद्धा के नाम पर बड़ा घोटाला है। चाहे महाव्रत पाले एवं भक्ति करे तथा व्रत करे और मंदिर में करोड़ रूपया खर्च करे

यह सभी घोटाला है (श्रोता :- छिलका कूटते है !) छिलका कूटते है। कदाचित राग की मंदता हो तो यह थोथा पुण्य है। आहाहा ! इसमें जन्म-मरण का अंत नहीं प्रभु। यह तो सभी जन्ममरण का बीज है, आहाहा !

यह शुभ भाव भी हमारा है एवं मैं करता हूँ - ऐसा मिथ्यात्वभाव... आहाहा ! यह अनंत चौराशी के अवतारों का गर्भ है, इसमें से अनंत अवतार निगोद के नरक के पशु के ढोर के अवतार होंगे। आहाहाहा ! वहाँ किसी की सिफारिस काम नहीं आये कि हमने बहुतों को समझाया था न... बहुतों कों जैन बनाया था न... आहाहा ! बापू यह वस्तु भिन्न है। आहाहा ! यहाँ तो बोलने का विकल्प भी जहाँ हमारा नहीं। आहाहा ! भगवान तीनलोक के नाथ आत्मा एवं उनकी वाणी भी हमारी नहीं, आहा ! उसके लक्ष्य में जाऊं तो मुझे राग हो, यह लक्ष्य छोड़कर चैतन्यभगवान ज्ञायक भाव परमपिंड प्रभु विद्यमान है, एक समय की पर्याय के पास ही विद्यमान है, वहाँ नजर, करने से, जिस नजर में सम्यग्दर्शन होता है, सम्यग्ज्ञान होता है, उसे यह आत्मा शुद्ध है - ऐसा कहा जाता है। समझ में आया ?

छठवीं एवं ग्यारहवीं गाथा तो अलौकिक है। यह तो अंतिम एक पद की व्याख्या चलती है। आहाहा ! इसका पार नहीं, आहाहा ! सम्यग्दृष्टि-ज्ञानी संत, आत्मा के आनंद का अनुभव करनेवाले। आहाहाहा ! ऐसे संतों की वाणी का क्या कहना ?

`वह ही' अर्थात ज्ञायक, वह पुण्य-पापरूप हुआ नहीं, प्रमत्त-अप्रमत्तरूप हुआ नहीं। प्रभु द्रव्य वह ही, उसी वस्तु को। `समस्त अन्य द्रव्यों के भावों से भिन्नरूप उपासित होता हुआ' उसकी सेवा करे तो उसको सेवा अर्थात, दृष्टि में सत्कार एवं आदर करे तब उसे यह द्रव्य शुद्ध है। आहाहा ! देखो इतना चला।

अब चौथे पद की व्याख्या, सूक्ष्म है प्रभु ! क्या हो सकता है ?

`प्रभु का मार्ग है वीरों का कायरों का काम नहीं वहाँ' आहाहा ! यह पुण्य-पाप में, पुण्य में धर्म एवं पाप में अधर्म माननेवाले पामर मिथ्यादृष्टि... कहते हैं, ऐसे जीवों का यहाँ काम नहीं। आहाहा ! यहाँ तो पुरुषार्थी... आहाहा !! अंतर स्वरूप का स्वीकार करनेवाला पुरुषार्थी है, यह तो ऐसे पुरुषार्थवालों की बातें है। आहाहा ! अब चौथे पद की व्याख्या चलती है।

**`दाह्य के आकार होने से अग्नि को दहन कहते हैं'** क्या कहते हैं ? अग्नि को `जलानेवाली' कहा जाता है। यह जलने योग्य पदार्थ के आकारवाली होने से, यह लकड़ी को कण्डे को जलाये तब, आकार तो वैसा होता न...? जैसा कण्डा और लकड़ी है उसका - ऐसा आकार होता है। परंतु यह आकार कहीं उसके कारण नहीं हुआ, वह तो अग्नि का आकार है। सूखा हुआ गोबर हो `सुखा हुआ'

समझे ? जो यों ही गोबर पड़ा हो, एवं सूख गया हो और गोबर इकट्ठा करके थापें वह कण्डा वह गोबर पड़ा हो एवं सूख गया हो उसे काठियावाड़ में `अड़ायुछाणु' कहते हैं। तुम्हारे यहाँ कुछ कहा जाता होगा। तो वह गोबर जैसा सूखा हो उसे अग्नि जलाये तो आकार तो वैसा ही हो परंतु वह आकार तो अग्नि का है। इसका (गोबर का) नहीं। जलने योग्य वस्तु के आकार की हुयी इसलिये दाह्य के आकाररूप अग्नि, पराधीन हुयी - वह जलने योग्य के आकार हुयी पराधीन - ऐसा नहीं। आहाहा ! अभी तो यह दृष्टांत है हो ? आत्मा में तो बाद में घटायेंगे। आहाहाहा ! अरे !

`दाह्य के जलने योग्य पदार्थ के आकाररूप' अर्थात ? कण्डा, लकड़ी, कोयला उनके आकाररूप अग्नि होने से दहन-जलानेवाली कहलाती है। है न दहन अर्थात जलानेवाली। `तब भी दाह्यकृत अशुद्धता उसे नहीं'। जलने योग्य पदार्थ का जैसा आकार यहाँ हुआ, इसलिये उसकी अपेक्षा से वहाँ आकार हुआ है, ऐसी अशुद्धता पराधीनता उसको नहीं। यह अग्नि का आकार हुआ है वह स्वयं से हुआ है। ऐसे आकाररूप अग्नि स्वयं से हुयी है। यह कण्डा और लकड़ी और कोयला के आकाररूप अग्नि हुयी इसलिये वह जलने योग्य आकाररूप हुई, तो जलाने योग्य अग्नि को पर की पराधीनता है - ऐसा नहीं। आहाहाहाहा ! है ?

`जलने योग्य पदार्थों के आकाररूप होने से' अग्नि को `दहन' कहा जाता है

तब... `दहन' तो आवाज ऐसी आयी कि जलने योग्य हो उसे जलाती है अर्थात कि उस आकाररूप हुयी - ऐसा नही है। उस समय अग्नि अपने आकाररूप हुई है। आहाहा ! जलने योग्य पदार्थ के आकारूप अग्नि हुई वो अग्नि अपने आकारूप स्वयं अपने से हुई है। आहाहा ! समझ में आया ?

अभी तो दृष्टांत है। फिर, सिद्धांत तो अंदर उतरेगा।

तब यह दाह्य कृत जलने योग्य पदार्थ के आकाररूप होने से, अशुद्धता अग्नि को नहीं। यह अशुद्धता अग्नि को, उसके कारण नहीं। वह तो अग्नि अपने आकाररूप हुयी है, जो आकार है वह अग्नि का आकार है, जलने योग्य पदार्थ का यह आकार नहीं। आहाहाहा ! `उसीप्रकार ज्ञेयाकार होने से'... ज्ञानस्वरूपी प्रभु, ज्ञेय जनाने योग्य, पदार्थों का आकार यहाँ आने से, जाने कि यह ज्ञेयकृत आकार है - ऐसा नहीं। वह तो ज्ञान का अपना आकार इसप्रकार परिणमा है। आहाहा !

फिर से... शीघ्र समझ में आये यह - ऐसा नहीं, आहाहा ! जैसे जलने योग्य के आकाररूप अग्नि होने से, अग्नि को जलने योग्य पदार्थ की अशुद्धता अर्थात पराधीनता उसे नहीं। अग्नि स्वयं ही उस आकाररूप हुयी है। उसीप्रकार ज्ञेयाकार ज्ञान में, शरीर, वाणी, मन, मकान, पैसा - ऐसा आकार दिखे... उसके आकाररूप

यहाँ ज्ञान हुआ इसलिये वह ज्ञेयाकार की अपेक्षा से हुआ - ऐसा ज्ञान के आकार को पराधीनता नहीं। ज्ञान स्वयं, खुद उसरूप उस आकाररूप हुआ है। ***पर को जानने के समय, पर वस्तु जैसी है उस आकाररूप ज्ञान हुआ, परंतु वह ज्ञान, (जो) जानने लायक है उसके कारण हुआ है - ऐसा नहीं। वह ज्ञान ही स्वयं उस आकाररूप (खुद) परिणमा है स्वयं से स्वतंत्र।*** आहाहा !

`ज्ञेयाकार होने से'... अर्थात् अब क्या यह जरा सूक्ष्म लेते हैं। सम्यग्ज्ञानी को जो राग होता है, ज्ञानी को भी राग होता है, तब राग जैसा ज्ञेयाकार होता है राग के जैसी यहाँ ज्ञान की पर्याय हो, परंतु इसलिये ज्ञान की पर्याय राग के कारण हुयी है - ऐसा नहीं। आहाहा ! यह ज्ञान की पर्याय उस आकाररूप परिणमे - ऐसी स्वतंत्र अपने से हुयी है। आहाहा ! धर्मी जीव को आत्मज्ञान हुआ है उसे, अभी राग आता, तब राग के आकाररूप यहाँ ज्ञान होता है, पर्याय में जैसा राग है, वैसा यहाँ ज्ञान होता है परंतु उससे वह ज्ञानाकार राग के आकाररूप हुआ इसलिये पराधीनता है - ऐसा नहीं। यह ज्ञानाकार राग का ज्ञान होकर, ज्ञानाकार ज्ञान स्वयं स्वयं से परिणमा है। यह ज्ञेय-राग के कारण नहीं।

किसे यह चिंता है ? पूरी दुनियाँ, आहाहाहा ! बाईस घण्टे, तेईस घण्टे पत्नी, बच्चे, व्यापार पाप, अकेला पाप बापू, एकाद घण्टे का समय मिले, सुनने जाये, वहाँ सभी उल्टा कहें, पूरा उसका घण्टा लूट लेते, तुम्हें ऐसे धरम होगा न... तुम्हें ऐसे होगा। तुम्हें इससे होगा न, आहाहा ! अरे... जिंदगी चली जाती है। परमात्मा की पुकार है प्रभु ! उसको तुमने तुम्हारे स्वभाव से स्वभाव को स्वीकार करके शुद्धता जानी, अब यह शुद्धता जो पर्याय में आयी, हुयी यह ज्ञान, उसमें अभी भी रागादित होता है यह राग का ज्ञान यहाँ होता है, इसलिये वह राग जैसा है वैसा ही ज्ञान यहाँ होता है, इसलिये ज्ञेयकृत अशुद्धता यहाँ हुई-ज्ञान उस आकाररूप हुआ इसलिये ज्ञेयकृत अशुद्धता हुयी - ऐसा नहीं।

यह ज्ञान का स्वभाव ही, उसप्रकार राग संबंधी ज्ञान, अपना स्वयं से हुआ है, ऐसी उसकी स्वाधीनता है। आहाहा ! वीतराग का मार्ग सूक्ष्म है बापू ! अरे अभी तो कहीं मिलता नहीं भाई ! क्या कहें ? सुनने मिलता नहीं, करे तो कहाँ से। आहाहाहा !

क्या कहते हैं ? कि सम्यग्दृष्टि को अपनी पर्याय में शुद्ध त्रिकाली (वस्तु) है - ऐसा ज्ञात हुआ, इसलिये उसे शुद्ध कहा। अब इसतरफ इसतरफ जाने पर शुद्ध की पर्याय प्रगटी, उसमें शुद्ध ज्ञात हुआ, इसलिये इसे शुद्ध कहा। अब दूसरी तरफ रागादिक जानने में आते हैं, अभी राग शेष है, यह राग ज्ञात होता है, इसलिये

वह `राग का ज्ञाता है' वैसा ज्ञान है ? तो कहते है `ना'। यह राग संबंधी ज्ञान, रागाकारे हुआ, वह ज्ञान अपने आकाररूप हुआ है। यह राग के कारण हुआ नहीं, अपने स्वपर प्रकाशक स्वभाव के कारण यह पर प्रकाशरूप ज्ञान हुआ है। आहाहाहा ! समझ में आया कुछ ? भाषा समझ में आती है न ? - ऐसा मार्ग है भाई क्या करें ? आहाहा !

यहाँ तो समकिती को ज्ञानी को आत्मा का ज्ञान हुआ कि त्रिकाल शुद्ध है। - ऐसा पर्याय में ज्ञान हुआ, इसलिये उसे शुद्ध कहा जाता है। अब, इसकी पर्याय में राग होता है और उसकी पर्याय में यह शरीर मकान आदि ज्ञात होता है। वह ज्ञान, वह जैसा ज्ञेय है उस आकाररूप यहाँ ज्ञान होता है, इसलिये वह ज्ञान की पर्याय ज्ञेय के कारण (हुयी) इतनी पराधीनता है ? तब कहते `ना'। यह ज्ञेयकृत ज्ञान हुआ नहीं, यह ज्ञान का अपना स्वभाव ही परप्रकाश का उसप्रकार का उसरूप हुआ है। आहाहाहा ! गहन विषय है बापू !

अरेरे ! सत्यस्वरूप हाथ न आये तब तक मर जाना है बिचारा, चौराशी के अवतार में भटक-भटक करके कचूमर निकल गया है बापू ! प्रभु तो कहते हैं, कि तुम्हारे दुःख का एक-क्षण, तुम्हारे एक क्षण का नर्क का दुःख प्रभु करोड़ों भवों एवं करोड़ों जीभों से न कह सकें। ऐसे दुःख तुमने एक क्षण में भोगे हैं। ऐसे ऐसे तेंतीस सागर एवं - ऐसा अनंत काल... आहाहा ! भाई यह मिथ्यात्व के कारण यह सब हुआ बापू ! आहाहा ! तब सम्यग्दर्शन बिना यह चौराशी के अवतार में मर जायेगा बापा ! भटकने का कहीं अंत नहीं आयेगा भाई। आहाहा !

- ऐसा जो सम्यग्दर्शन, आहाहा ! जिसने त्रिकाली शुद्ध को पकड़ा और ज्ञान की पर्याय में शुद्धता एवं आनंद का स्वाद आया और `स्वप्रकाशक' पर्याय ज्ञान की हुयी, अब उसको भी अभी थोड़ा-पूरा केवलज्ञान नहीं इसलिये उसे राग आता है, तो इस राग का यहाँ ज्ञान होता है। ***जैसा राग हो मंदराग तो मंद का, तीव्र होय तो तीव्र का, जो यह राग है, जो रागकृत राग के आकाररूप ज्ञान हुआ है ? या ज्ञान की स्वयं की ज्ञानकृत, स्वयं का आकार इसप्रकार होने के कारण हुआ है ?*** आहाहा !

अरे- ऐसा सभी व्यापारियों को धंधे के कारण सूझे कहाँ। आहाहा ! बानियों को जैन धर्म मिला। आहाहा ! मार्ग सूक्ष्म है भाई ! ओहोहो ! गजब बात करते है न !!

प्रभु तुझे कहते हैं कि आत्मा का ज्ञान हुआ, परंतु अब यह शुद्ध चैतन्य का ज्ञान हुआ, पर्याय में शुद्ध है - ऐसा भासित हुआ, परंतु अभी इस पर्याय में जो

राग होता है और उस पर्याय का ज्ञान अभी है, इसमें पर का ज्ञान शरीर का, स्त्री का, कुटुंब का जिसप्रकार से (ज्ञेय होता) इसीप्रकार यहाँ ज्ञान होता है। तो यह ज्ञेय है उसकी अपेक्षा से वैसा ज्ञान हुआ है ? कि यह ज्ञान का परप्रकाशक का स्वतः स्वभाव होने से, पर की अपेक्षा बिना स्वयं ज्ञानकृत, पर का जानने का भाव (कार्य) हुआ यह ज्ञाता का कार्य है। आहाहा ! समझ में आया ?

फिर से... यहाँ तो (ज्ञायक) ज्ञात हुआ और अब पर ज्ञात होता है यह बात चलती है। (साधक की) आहाहा ! जिसे आत्मा का ज्ञान नहीं, उसकी तो बात ही नहीं। यह तो पराधीन होकर, मिथ्यात्व में पड़ा भटककर मरनेवाला है। आहाहाहा ! जिसे यह आत्मा ज्ञान स्वरूपी प्रभु ! यह जिनस्वरूपी वस्तु, यह जिन के परिणाम में जिनस्वरूपी जानने में आया, शुद्ध परिणाम में शुद्धवस्तु ज्ञात हुयी, उसे शुद्ध कहा।

अब, इस तरफ (दूसरी तरफ) ? आहाहा ! कि इस तरफ ज्ञान की पर्याय अभी जैसा राग होता, द्वेष होता उसीप्रकार वह ज्ञान वैसा ही जाने, इसलिये वह ज्ञान, वह ज्ञेय कृतता के कारण अशुद्ध है ? अर्थात पराधीन है ? कि, नहीं। ***यह ज्ञान का उस समय का स्वभाव ही, स्व को प्रकाशने के समय, पर को प्रकाशने का स्वभाव स्वतः है, यह स्वतःरूप ज्ञान, राग को जानता हुआ परिणमता है। आहाहा ! `वह ज्ञायक का ज्ञान है, वह राग का ज्ञान नहीं' - ऐसा कहते हैं।*** आहाहा ! अरेरे ! यह वस्तु मिले नहीं वहाँ (तक) अभी क्या करे ? आहा ! अरे ! अनंत भव हुये, आहाहा ! जैन साधु हुआ, दिगम्बर साधु अनंतबार हुआ, परंतु वह राग की एकता तोड़कर स्वभाव का ज्ञान किया नहीं, और स्वभाव का ज्ञान होने में पर की कोई अपेक्षा है ही नहीं।

यहाँ तो पर का ज्ञान करने में भी पर की अपेक्षा नहीं। आहाहाहा ! समझ में आया ? समझ में आये उतना समझना प्रभु ! यह तो... तीनलोक के नाथ की बातें है बापा ! जिसे इन्द्र और गणधर सुनते (है), आहाहा ! यह बात बापू कहीं साधारण बात नहीं है। आहाहा !

`ज्ञेयाकार होने से उस भाव को'** उस भाव को अर्थात **ज्ञेयाकार हुआ जो ज्ञान उस भाव को `ज्ञायकपना' यह प्रसिद्ध है। `ज्ञायकता'** है यह प्रसिद्ध है, परंतु यह **`ज्ञायकता' है यह क्या ? `तथापि ज्ञेयकृत अशुद्धता उसे नहीं', राग ज्ञात होता है एवं उसका यहाँ ज्ञान होता है इसलिये राग की अपेक्षा रखकर ज्ञान हुआ है यहाँ, ऐसा नहीं। आहाहाहाहा !

विशेष कहने में आयेगा... समय हो गया।

- प्रमाण वचन गुरुदेव !